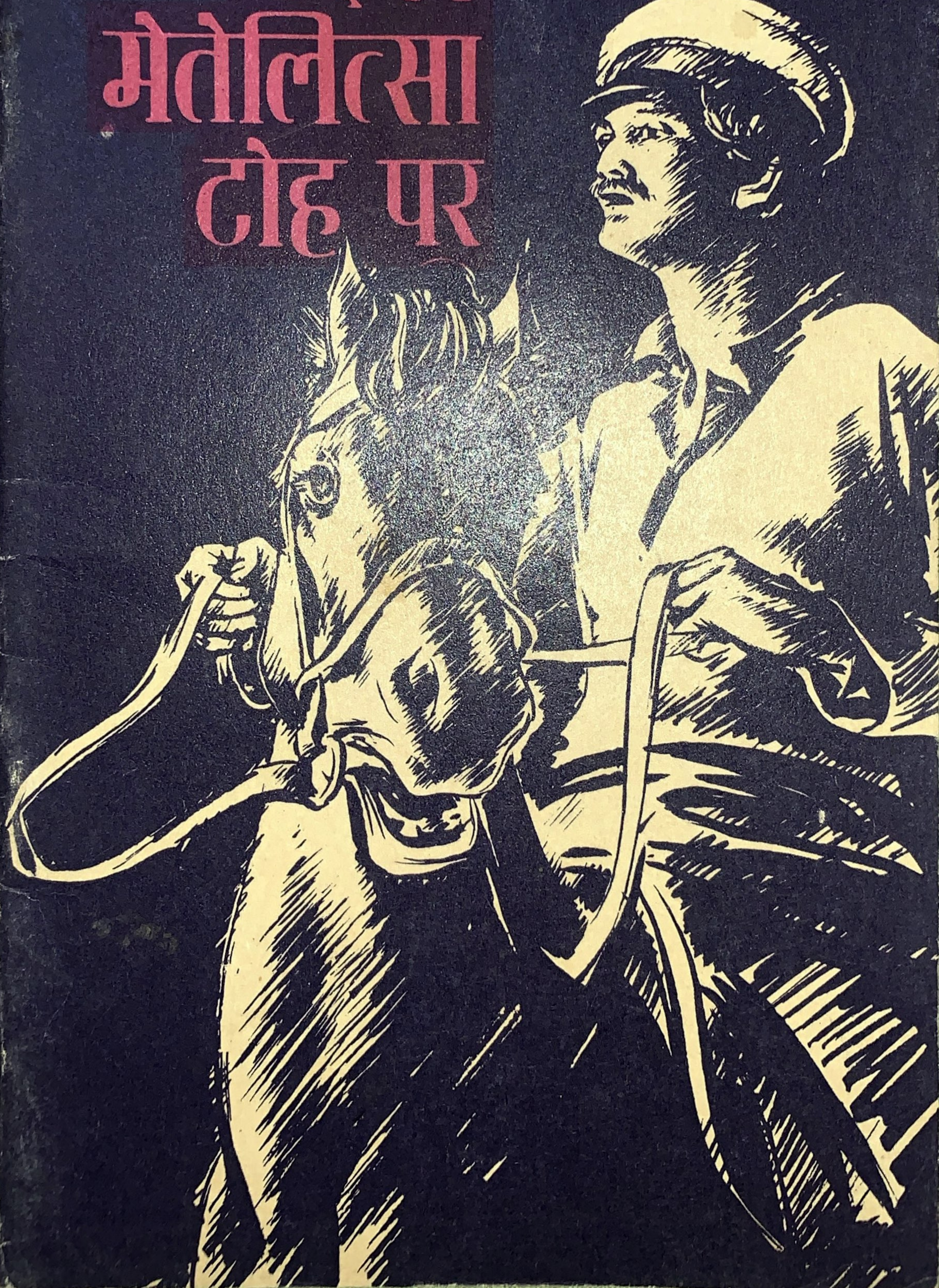
अलेक्सान्द्र फ़देयेव

मेतेलित्सा टोह पर



अलेक्सान्द्र फ़देयेव

मेतेलित्सा टोह पर

रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक : योगेन्द्र नागपाल

А. Фадеев

„МЕТЕЛИЦА“
(глава из романа „Разгром“)

на языке хинди

A. Fadeev,

METELITSA GOES ON RECONNAISSANCE
(a chapter from The Rout)

in Hindi

© हिन्दी अनुवाद • रादुगा प्रकाशन • १९८३

सोवियत संघ में मुद्रित

Ф $\frac{4803010102-308}{031(01)-83}$ 379-83

मेतेलित्सा को टोह पर भेजते हुए छापामार दस्ते के कमांडर लेविन्सन ने उससे यह ताकीद की कि वह हर हालत में उसी रात वापस आ जाए। लेकिन मेतेलित्सा को जिस गांव भेजा गया था, वह वास्तव में लेविन्सन के अनुमान से कहीं अधिक दूर था। मेतेलित्सा दिन के कोई चार बजे छापामार दस्ते से अलग हुआ और पूरे ज़ोर से घोड़े को दौड़ा ले चला। घोड़े की गर्दन पर झुका हुआ वह कोई खूंख्वार परिंदा ही लगता था, उसके पतले से नथुने अदम्य उत्साह से फूले जा रहे थे। पांच दिन तक उनका छापामार दस्ता शत्रु से छिपता हुआ धीरे धीरे जंगल में बढ़ता रहा था, और अब ऊब भरे पांच दिनों के बाद यों हवा से बातें करते हुए उसके रोम-रोम में एक मादकता भरती जा रही थी। उधर पतझड़ के ढलते दिन की उदास रोशनी में डूबा ताइगा वन था कि खत्म होने

में ही नहीं आ रहा था, घास-पात का मर्मर ही मेतेलित्सा को अपने चारों ओर सुनाई दे रहा था। और जब बिल्कुल अंधेरा घिर आया, तब कहीं जाकर ताइगा वन से निकलने पर उसने घोड़े को रोका। यहां वन के सिरे पर ही लट्ठों से बना एक झोंपड़ा था—जीर्ण-शीर्ण, छत गिरी हुई। कभी किसी मधु-मक्खियां पालने वाले ने जाड़ों में छत्ते रखने के लिए इसे बनाया होगा।

मेतेलित्सा ने घोड़ा बांधा और हाथों तले भुर-भुराते लट्ठों के सिरों का सहारा लेते हुए दो दीवारों के कोने पर चढ़ गया, हालांकि यहां से किसी भी क्षण वह उस अंधेरे छेद में गिर सकता था, जहां से काई लगी लकड़ी और सड़ते घास-पात की घुटन भरी दुर्गंध आ रही थी। इस कोने पर वह अपनी चीमड़ टांगों के बल घुटने ज़रा मोड़े हुए उचका-उचका सा दसेक मिनट तक खड़ा रहा। उसकी आंखें अंधेरे में गड़ी हुई थीं और कान रात्रि के हर स्वर को ध्यान से सुन रहे थे। काले वन की पृष्ठभूमि में खूंख्वार परिंदे से उसकी समानता और भी अधिक बढ़ रही थी। धूमिल तारों भरे आकाश तले पहाड़ियों की दो गहरी काली रेखाओं के बीच विषण्ण घाटी फैली हुई थी और उसमें जहां-तहां गांजों और झुरमुटों के धब्बे दीख रहे थे।

मेतेलित्सा उछलकर काठी पर बैठा और रास्ते पर आ गया। उसकी काली लीकों पर जाने कब से कोई घोड़ागाड़ी नहीं चली थी, वे घास में प्रायः

छिप ही गई थीं। अंधेरे में कृशकाय भोज वृक्षों के शांत धवल तने बुझी हुई मोमबत्तियों जैसे प्रतीत होते थे।

वह एक टीले पर चढ़ गया: बाईं ओर पहले की ही भांति पहाड़ियों की काली शृंखला चली गई थी – किसी भीमकाय जीव के मेरुदंड सी मुड़ी हुई; नदी का कलकल कानों में पड़ रहा था। लगभग दो किलोमीटर दूर, शायद नदी के पास ही, आग जल रही थी। उसे देखकर मेतेलित्सा को अपने एकाकी बचपन की याद हो आई, जब वह मवेशियों को चराता चरागाहों में अकेला भटकता रहता था। आगे, गांव की पीली, अपलक बत्तियां रास्ते को काट रही थीं। दाईं ओर पहाड़ियों की शृंखला एक ओर को मुड़ गई थी और नीले झुटपुटे में खो गई थी; वहां ज़मीन काफ़ी नीची लगती थी। प्रत्यक्षत: वहां नदी का पुराना पाट था; उसके बगल-बगल मनहूस काला जंगल चला गया था।

"हो न हो, वहां दलदल है," मेतेलित्सा ने सोचा। उसे ठंड लगने लगी थी। उसकी बंडी खुली हुई थी, फ़ौजी कमीज़ के कुछ बटन टूटे हुए थे और गला खुला था। उसने पहले अलाव की ओर जाने का फ़ैसला किया। सतर्कता के तौर पर उसने रिवाल्वर होलस्टर में से निकालकर बंडी तले पेटी में खोंस लिया, और होलस्टर ज़ीन के पीछे बंधे झोले में छिपा दिया। बंदूक उसके पास थी नहीं। अब वह खेत से लौटते किसान जैसा लगता था: जर्मनी की लड़ाई के बाद बहुत से लोग यों फ़ौजी बंडी पहने फिरते थे।

वह अलाव के पास पहुंच ही गया था कि अचानक अंधेरे में आकुलता भरी हिनहिनाहट गूंजी। घोड़ा बिदककर सरपट दौड़ा, उसके सशक्त शरीर में कंपकंपी दौड़ गई, कनौतियां खड़ी हो गईं और वह भी जवाब में बड़ी उद्विग्नता से हिनहिनाने लगा। उसी क्षण आग के पास एक परछाईं डोली। मेतेलित्सा ने घोड़े को चाबुक दे मारा और वह सवार को लेकर सीखपा हो गया।

आग के पास एक दुबला-पतला काले-काले बालों वाला लड़का खड़ा था – छाल की जूतियां, फटी पतलून और अपने कद से बहुत लंबा कोट पहने। कोट को बदन पर लपेटकर उसने सन की डोरी से फेंटा लगा रखा था। एक हाथ में वह कोड़ा पकड़े था और दूसरा, लटकते आस्तीन वाला यों ऊपर उठाए था, जैसे अपना बचाव कर रहा हो। उसकी आंखें भय से फटी जा रही थीं। लड़के के ऐन नाक के सामने मेतेलित्सा ने झटके से घोड़े को रोका, लड़का घोड़े तले आते आते बचा। मेतेलित्सा उस पर सख्ती और रुखाई से चिल्लाना चाहता था, पर तभी उसे अपने सामने लटकते आस्तीन के ऊपर ये भयभीत आंखें, यह पतलून, जिसमें से घुटने दिख रहे थे और यह मालिक का फटा-पुराना, एकदम खस्ताहाल कोट दीखा, जिसमें से बच्चे की पतली सी चिड़े जैसी गर्दन ऐसे दयनीय भाव से निकली हुई थी।

"अबे, खड़ा क्यों है?.. डर गया? वाह रे चिड़े, है न भोंदू!" मेतेलित्सा सकपकाकर अनचाहे ही उस

स्नेहमिश्रित रूखे स्वर में बोलने लगा, जिसमें वह घोड़ों से ही बातें करता था, लोगों से कभी नहीं। "खड़ा है यहां बुत बन के... अगर रौंद देता तो?.. है न, भोंदू!" उसने फिर से कहा। वह बिल्कुल ही पसीजता जा रहा था और महसूस कर रहा था कि इस लड़के को, उसकी दयनीय अवस्था को देखकर उसके मन में कोई बालसुलभ-सा, करुणामय, पर साथ ही चुहल भरा भाव उठ रहा है... लड़के की मुश्किल से सांस में सांस आई और उसने अपनी बांह नीचे कर ली।

"और तुम क्यों यों लुटेरों की तरह चढ़ते आ रहे हो?" लड़का बड़ों की तरह बेझिझक, तर्कपूर्ण बात करने की कोशिश कर रहा था, हालांकि अभी भी ज़रा सहमा हुआ था। "डर तो लगेगा ही, घोड़े जो हैं मेरे पास..."

"घो-ओ-ड़े?" मेतेलित्सा ने परिहास में आवाज़ खींची। "भई वाह, क्या कहने हैं!" दोनों हाथ कमर पर रखकर उसने धड़ पीछे को झुकाया और अपनी रेशमी चंचल भौंहों को किंचित हिलाते हुए आंखें सिकोड़कर लड़के को देखने लगा, और फिर दिल खोल-कर इतने उल्लसित स्वर में खिलखिलाया कि स्वयं ही चकित हो गया: कहां से इतने हार्दिक स्वर निकल रहे हैं?

अभी भी मन में शंका लिए, कुछ-कुछ सकुचाते हुए लड़के ने नाक सुड़की, पर तभी वह समझ गया कि डरने की कोई बात नहीं है, उलटे यह सब बड़ी

ही मज़ेदार बात है। उसके चेहरे पर इतने बल पड़ गए कि नाक की नोक ऊपर को उठ गई और वह भी पतली सी आवाज़ में बिल्कुल बचकानी नटखटी भरी हंसी हंसने लगा। मेतेलित्सा के लिए यह इतना अप्रत्याशित था कि उसकी हंसी और भी ज़ोर से फूट पड़ी और कुछ मिनटों तक वे दोनों एक दूसरे की देखादेखी यों ठहाके मारते रहे: एक काठी पर आगे-पीछे झूल रहा था, अलाव की रोशनी में सुवर्ण लगते अपने दांत चमका रहा था, दूसरा कूल्हों पर गिरकर हथेलियां ज़मीन पर टिकाए था और हर कहकहे के साथ अपना सारा शरीर पीछे को फेंक रहा था।

आखिर रकाब में से पांव छुड़ाते हुए मेतेलित्सा ने कहा: "वाह रे छुटकन्ने, तूने तो आज हंसा-हंसा के लोट-पोट कर दिया..." घोड़े से नीचे कूदकर मेतेलित्सा ने आग की ओर हाथ बढ़ाए।

लड़का अब हंसना बंद करके गम्भीर और सोल्लास आश्चर्य के साथ उसकी ओर देख रहा था, मानो इस इंतज़ार में था कि और कौन सी विचित्र हरकत वह करता है।

"तुम भी खूब हंसौहें हो," आख़िर बड़ी स्पष्टता से, मानो उसके बारे में अपने सभी विचारों को इन शब्दों में उतारते हुए उसने कहा।

मेतेलित्सा ने खीसें निपोड़ीं: "कौन? मैं? हां, भैया, मैं तो ऐसा ही हूं।"

"मैं तो डर ही गया था," लड़के ने मन की

सच्ची बात कही। "यहां घोड़े जो चर रहे हैं। और मैं इधर अलाव में आलू भून रहा हूं..."

"आलू भून रहा है? यह तो बहुत बढ़िया बात है," मेतेलित्सा उसके पास बैठ गया, पर लगाम पकड़े रहा। "आलू लेता कहां से है तू?"

"लेने कहां से हैं?.. आलू की भी यहां कोई कमी है क्या?!" और लड़के ने अपना हाथ घुमा दिया।

"चुराता है?"

"हां, चुराता ही हूं... लाओ, मैं घोड़ा पकड़ लेता हूं... या सांड़ है क्या? डरो नहीं, मैं छोड़ूंगा नहीं... घोड़ा अच्छा है," लड़के ने घोड़े के मांसल सुघड़ कसे पेट वाले शरीर पर अनुभवी नज़र डालते हुए कहा। "तुम हो कहां के?"

"हां, घोड़ा बुरा नहीं है," मेतेलित्सा ने हामी भरी। "तू कहां रहता है?"

"वो रहा हमारा गांव–ख़निख़ेज़ा," लड़के ने बत्तियों की ओर इशारा किया। "पूरे एक सौ बीस घर हैं, न एक़ क़म, न एक ज़्यादा," लड़के ने किसी के शब्द दोहराए और थूका।

"अच्छा... हमारा गांव वोरोब्योव्का है, पहाड़ियों के पार है। सुना है कभी?"

"वोरोब्योव्का? नहीं, मैंने नहीं सुना... लगता है, दूर है..."

"हां, दूर है।"

"हमारे यहां किस काम से आए हो?"

"क्या बताऊं... लंबा किस्सा है... कुछ घोड़े खरीदने की सोच रहा हूं, सुना है तुम्हारे यहां घोड़े बहुत हैं... मुझे, भैया, घोड़ों का बड़ा शौक है," मेतेलित्सा ने चालाकी के पुट से मानो अपने मन का राज़ खोला। "सारी उमर घोड़े चराए हैं, पर अपने नहीं, दूसरों के ही।"

"तुम सोचते हो मैं अपने चरा रहा हूं? मालिक के हैं..."

लड़के ने अपना लंबा आस्तीन ऊपर करके दुबला, मैला सा हाथ उघाड़ा और कोड़े की मूठ से राख कुरेदने लगा, वहां से काले-काले लुभावने आलू लुढ़कने लगे।

"कुछ खाओगे?" उसने पूछा। "मेरे पास रोटी भी है, थोड़ी सी है, पर..."

"नहीं, भैया, मैंने अभी-अभी ठसाठस खाया है," मेतेलित्सा ने झूठ बोला, और अब कहीं जाकर उसे अहसास हुआ कि वह कितना भूखा है।

लड़के ने आलू तोड़कर उस पर फूंक मारी और छिलके समेत ही आधा आलू मुंह में डाल लिया, उसे जीभ पर घुमाया और फिर बड़े मज़े से चबाने लगा; जबड़ों के साथ उसके नुकीले कान भी हिल रहे थे। आलू निगलकर उसने मेतेलित्सा की ओर देखा और जितनी स्पष्टता से उसने पहले अपना यह विश्वास व्यक्त किया था कि मेतेलित्सा हंसौहां है, उतनी ही स्पष्टता से अब फिर बोला:

"मैं तो अनाथ हूं। छह मास से बिल्कुल अकेला हूं। बापू को कज़्ज़ाकों ने मार डाला, मां के साथ

बलात्कार करके उसे भी काल कर दिया, और भाई की भी जान ले ली..."

"कज़्ज़ाकों ने?" मेतेलित्सा सिहर उठा।

"और नहीं तो क्या। बेबात के ही मार डाला। और घर भी फूंक दिया, हमारा ही नहीं, पूरे दर्जन भर घर फूंक डाले। आए मास चले आते हैं। अभी भी कोई चालीस गांव में हैं। और हमारे से आगे जो रकीत्नोये कस्बा है, वहां तो सारी गर्मियां उनकी पूरी रेजिमेंट डेरा डाले रही है। बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। लो, आलू खाओ न..."

"यह क्या बात हुई – तुम लोग भाग क्यों नहीं गए? इतना बड़ा जंगल है..." मेतेलित्सा तो उचक ही पड़ा।

"जंगल है तो क्या हुआ? जंगल में तो सारी उमर बैठे नहीं रह सकते। और फिर वहां ऐसा दलदल है कि फंस गए..."

"ठीक ही सोचा था मैंने," अपना अनुमान याद करते हुए मेतेलित्सा ने मन ही मन कहा।

और फिर उठते हुए बोला:

"सुन। तू ज़रा मेरा घोड़ा चरा मैं पैदल ही गांव हो आता हूं। यहां तो, लगता है, खरीदना तो दूर, जो है वह भी हाथ से जाता रहेगा..."

"इतनी जल्दी क्या है? बैठो न ज़रा!" लड़का एकदम उदास हो गया और उठ खड़ा हुआ। "यहां अकेले बैठे-बैठे जी ऊब आता है," उसने अपनी बात स्पष्ट की और अनुरोध भरी नम आंखों से मेतेलित्सा की ओर देखा।

"नहीं, भैया, जाना ही होगा," मेतेलित्सा ने मजबूरी दिखाते हुए कहा। "यही तो समय है, अंधेरा रहते ही टोह ले लूं... बस मैं गया और आया, हां घोड़े को छांद देते हैं। कज़्ज़ाकों का बड़ा अफ़सर कहां ठहरा हुआ है?"

लड़के ने उसे समझाया कि वह घर कहां है, जहां स्क्वैड्रन कमांडर ठहरा है और पिछवाड़े-पिछवाड़े कैसे वहां पहुंचा जाए।

"कुत्ते तुम्हारे गांव में बहुत हैं?"

"कुत्ते तो बहुतेरे हैं, पर कटखने नहीं हैं।"

मेतेलित्सा ने घोड़े को छांदकर लड़के से विदा ली और नदी के किनारे-किनारे पगडंडी पर बढ़ चला। लड़का उदास नज़रों से उसे जाते देखता रहा, जब तक कि वह अंधेरे में ओझल नहीं हो गया। आधे घंटे बाद मेतेलित्सा गांव के बिल्कुल पास पहुंच गया। पगडंडी दाईं ओर को मुड़ गई, लेकिन वह लड़के की बात मानते हुए कटी हुई चरागाह में सीधे चलता गया और आखिर किसानों के घरों के पीछे बनी क्यारियों तक पहुंच गया। यहां से वह पिछवाड़े-पिछवाड़े चल दिया। गांव में सोता पड़ चुका था; बत्तियां बुझी हुई थीं; तारों की रोशनी में घरों की पयाल की गरम छतें धुंधली-धुंधली सी दीख रही थीं, घरों के इर्द-गिर्द फलों के झड़ चुके पेड़ शांत खड़े थे, सब्ज़ियों की क्यारियों से खुदी हुई नम ज़मीन की गंध आ रही थी।

मेतेलित्सा दो गलियां छोड़कर तीसरी में मुड़ा।

उसके पीछे कुत्ते अनमने से फटी-फटी आवाज़ में भौंक रहे थे, मानो खुद ही डर रहे हों, पर कोई भी बाहर नहीं निकला, किसी ने भी उसे आवाज़ नहीं दी। मालूम होता था कि लोग यहां हर बात के आदी हो गए हैं, इस बात के भी कि अनजाने, बेगाने लोग गलियों में घूमते हैं और जो जी में आए करते हैं। पतझड़ में, जब गांवों में शादियां होती हैं, आम तौर पर जो खुसुर-फुसुर करते जोड़े नज़र आते हैं, वे भी यहां नहीं दीख रहे थे: इस साल पतझड़ में बाड़ों की घनी परछाईं में कोई भी प्यार की बातें नहीं कर रहा था।

लड़के की बताई निशानियों का ध्यान रखते हुए गिरजे के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हुए उसने कुछ और गलियां पार कीं और आखिर पादरी के बाग के रोगन किए जंगले के पास जा पहुंचा। (स्क्वैड्रन कमांडर पादरी के घर पर ही ठहरा हुआ था)। मेते-लित्सा ने अंदर झांककर देखा, नज़रें इधर-उधर दौड़ाईं, कान लगाकर सुना, और जब उसे लगा कि डरने की कोई खास बात नहीं है, तो ज़रा भी आहट किए बिना जंगला लांघ गया।

बाग सघन और छतनार था, पर पत्तियां झड़ चुकी थीं। मेतेलित्सा दिल की प्रबल धड़कन को काबू में रखने का प्रयत्न करते हुए दम साधे आगे बढ़ रहा था। सहसा झाड़ियां खत्म हो गईं, वहां बाग में रास्ता था। बाईं ओर, कोई बीस गज़ दूर मेतेलित्सा को रोशन खिड़की दिखी। खिड़की खुली हुई थी। अंदर लोग बैठे थे। ज़मीन पर गिरी पड़ी पत्तियों पर मद्धिम प्रकाश

एकसार फैल रहा था और इस प्रकाश में पखराई टहनियों वाले सेब के पेड़ विचित्र, सुनहरी लग रहे थे।

"यह हुई बात!" मेतेलित्सा ने सोचा, उसका गाल फड़का, वह भभक उठा और उसके मन में वही निडर दुस्साहस हिलोरे लेने लगा, जो उसे प्रायः विकटतम पराक्रमों की प्रेरणा देता था: जब वह इस उधेड़बुन में ही था कि इस रोशन कमरे में बैठे लोगों की बातचीत वह सुने, इसकी किसी को ज़रूरत भी है या नहीं, तब भी वस्तुतः वह जानता था कि ऐसा किए बिना अब यहां से जाएगा नहीं। कुछ पल बाद खिड़की के बिल्कुल पास ही वह सेब के पेड़ की ओट में खड़ा था और वहां जो कुछ हो रहा था उसे बड़े ध्यान से सुनता और याद करता जा रहा था।

वहां कमरे के भीतर मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे चार लोग ताश खेल रहे थे। दाईं ओर छोटा सा बूढ़ा पादरी बैठा था – बाल बड़े जतन से बनाए हुए; उसकी पैनी निगाहें थीं कि निरंतर इधर-उधर दौड़ रही थीं। उसके पतले-पतले, छोटे से हाथ बड़ी फुर्ती से मेज़ पर चल रहे थे, उसकी कठपुतलियों की सी उंगलियां निस्स्वर ही पत्ते बांट रही थीं और उसकी नज़रें हर पत्ते की एक झलक पाने को आतुर थीं, सो उसका पड़ोसी, जिसकी पीठ मेतेलित्सा की ओर थी उससे पत्ता लेकर डरते-डरते एक नज़र उसे देखता और फिर झट से मेज़ तले छिपा लेता। मेतेलित्सा की ओर मुंह किए एक सजीला, भारी-भरकम अफ़सर दांतों में पाइप दबाए बैठा था, वह स्वभाव का मृदु

और सुस्त लगता था। शायद उसके भरे-पूरे शरीर के कारण ही मेतेलित्सा ने उसे स्क्वैड्रन कमांडर मान लिया। लेकिन किन्हीं अनबूझ कारणों से बाद में सारा समय उसका ध्यान चौथे खिलाड़ी पर ही अधिक रहा। थुलथुल बदरंग चेहरे तथा निश्चल बरौनियों वाला यह अफ़सर भेड़ की खाल की ऊंची, काली टोपी पहने था और भेड़ की खाल का काकेशियाई लबादा ओढ़े था, जिसके कंधों पर फ़ीतियां नहीं लगी हुई थीं। हर बार पत्ता फेंककर वह अपना लबादा खींचकर लपेटता।

मेतेलित्सा को जो कुछ सुनने की आशा थी उसके विपरीत उनकी बातचीत के विषय बिल्कुल मामूली और अरुचिकर थे। ज़्यादातर बातें ताश से ही जुड़ी हुई थीं।

"अस्सी," मेतेलित्सा की ओर पीठ किए बैठा खिलाड़ी बोला।

"यह तो कुछ भी नहीं, महामहिम, कुछ भी नहीं," काली टोपी वाले ने कहा। और फिर लापरवाही भरे अन्दाज़ में बोला, "सौ ब्लाइंड।"

सजीले और भरे-पूरे अफ़सर ने आंखें सिकोड़कर अपने पत्ते देखे, और मुंह से पाइप निकालकर बाज़ी एक सौ पांच तक बढ़ाई।

"मैं पास," पहले खिलाड़ी ने पादरी की ओर मुड़ते हुए कहा, जो शेष गड्डी थामे हुए था।

"मैंने यही सोचा था," काली टोपी ने खीसें निपोड़ीं।

"पत्ते ही नहीं आते, तो मैं क्या करूं?" पहले खिलाड़ी ने सफ़ाई पेश की और सहानुभूति पाने के लिए पादरी की ओर देखा।

"कछुआ धीरे-धीरे ही चलता है," पादरी ने आंखें मींचकर, पतली-पतली आवाज़ में ही-ही करते हुए मज़ाक किया। अपनी इस ही-ही से वह मानो अपने संवादी के खेल की महत्वहीनता पर बल दे रहा था। "दो सौ दो नम्बर काट भी लिए... सब पता है हमें!" और उसने बनावटी स्नेहपूर्ण चालाकी से मुस्कराते हुए तर्जनी हिलाई।

"पिस्सू कहीं का!" मेतेलित्सा ने सोचा।

"अच्छा, आप भी पास?" पादरी ने सुस्त अफ़सर से पूछा। "तो लीजिए और पत्ते," उसने काली टोपी से कहा और पत्ते खोले बिना उसकी ओर सरका दिए।

मिनट भर तो वे बड़े ज़ोर-ज़ोर से पत्ते मेज़ पर पटकते रहे, जब तक कि काली टोपी हार नहीं गई। "साला, बन कितना रहा था," मेतेलित्सा ने घृणा से भरते हुए सोचा। वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि चला जाए या और थोड़ी देर रुका रहे। पर वह जा नहीं सका क्योंकि हारा हुआ खिलाड़ी खिड़की की ओर मुड़ा और मेतेलित्सा ने अनुभव किया कि उसकी अपलक दृष्टि उसे बींध रही है।

इस बीच खिड़की की ओर पीठ किए बैठा खिलाड़ी पत्ते फेंटने लगा। वह अपना काम बड़े जतन से और नपी-तुली गतियों से कर रहा था, वैसे ही जैसे बुढ़ि-

याएं, जो बहुत अधिक बूढ़ी नहीं होती हैं, पूजा करती हैं।

"नेचिताइलो अभी तक नहीं आया," सुस्त अफ़सर ने जम्हाई लेते हुए कहा। "लगता है दाल गल गई। अच्छा होता, मैं भी उसके साथ हो लेता..."

"दोनों-दोनों?" टोपी ने खिड़की से मुंह फेरते हुए पूछा। "हां, वह तो झेल लेती!" मुंह बनाते हुए उसने आगे कहा।

"कौन, वस्योन्का?" पादरी ने पूछा। "ओ... वह ज़रूर झेल लेती... हमारे यहां एक गवैया था–पूरा सांड़... मैंने आपको बताया तो था... पर नेचिताइलो नहीं मानता। कभी भी नहीं... पता है कल मुझसे चुपके-चुपके क्या कह रहा था? कहता था, मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा, कहता था, मैं उससे शादी करने में भी नहीं हिचकिचाऊंगा, कहता था... धत् तेरे की!" सहसा हथेली से मुंह ढांपते हुए पादरी चिल्लाया, उसकी अक्लमंदी भरी आंखों में कुटिल चमक थी। "लानत है ऐसी याददाश्त पर! सोचा तक नहीं था, पर बात मुंह से निकल गई। अच्छा, अब किसी से कहना नहीं!" और उसने भय का दिखावा करते हुए अपने छोटे-छोटे हाथ नचाए। मेतेलित्सा की ही भांति सभी उसका पाखंड और उसके हर शब्द, हर गति में छिपी चाटुकारिता देख रहे थे, पर किसी ने उससे कुछ नहीं कहा और सब हंस दिए।

मेतेलित्सा नीचे झुककर बगल-बगल हटता हुआ

खिड़की से दूर जाने लगा। वह बाग के बीचोंबीच बने रास्ते पर मुड़ा ही था कि कंधे पर कज़्ज़ाकों का ओवरकोट डाले एक आदमी से टकरा गया। उसके पीछे दो और दीख रहे थे।

"क्या कर रहा है यहां?" इस व्यक्ति ने आश्चर्य से पूछा और अचेतन गति से ओवरकोट संभाल लिया, जो मेतेलित्सा से टकराने पर गिर ही चला था।

मेतेलित्सा एक ओर को कूदा और झाड़ियों में भागा।

"ठहरो! पकड़ो इसे! पकड़ो! इधर! ऐ!" कुछ आवाज़ें चिल्लाईं। पीछे गोलियां चलने की तड़ाक-तड़ाक हुई।

मेतेलित्सा झाड़ियों में भटक गया था, उसकी टोपी खो गई थी, अंदाज़े से ही वह भागता जा रहा था, लेकिन आवाज़ें अब आगे कहीं चीख-चिल्ला रही थीं और गली में कुत्ता गला फाड़कर भौंक रहा था।

"यह रहा, पकड़ो!" हाथ आगे को बढ़ाए मेतेलित्सा की ओर दौड़ता कोई आदमी चिल्लाया। मेतेलित्सा के कान के पास से सनसनाती गोली निकल गई। मेतेलित्सा ने भी गोली दागी। उसकी ओर भाग रहा आदमी लड़खड़ाकर गिर पड़ा।

"मैं तेरे हाथ न आया!" मेतेलित्सा ने उत्साह-पूर्वक कहा। उसे सचमुच ही अंतिम क्षण तक विश्वास नहीं था कि वह उनकी पकड़ में आ जाएगा।

पर किसी बड़े से, भारी-भरकम शरीर ने पीछे से उस पर कूदकर उसे धर दबोचा। मेतेलित्सा ने

हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, लेकिन उसके सिर पर एक ज़ोरदार प्रहार हुआ, जिससे वह सुन्न रह गया...

फिर वे उसे दबादब पीटने लगे, यहां तक कि बेहोश हो जाने पर भी उसे बार-बार उनके प्रहार महसूस हो रहे थे...

दस्ता जिस तलहटी में रात काट रहा था, वहां अंधेरा था और सीलन थी, लेकिन गुलाबी नदी के पार बादलों के बीच से नारंगी सूरज झांक रहा था और ताइगा वन में झड़े पत्तों की गंध लिए दिन चढ़ता जा रहा था।

घोड़ों के पास बैठे पहरेदार की आंख लग गई थी। नींद में उसे दूर से आती मशीनगन की तड़ातड़ जैसी एकसुरी, अविराम आवाज़ सुनाई दी और वह भयभीत सा बंदूक झपटकर उछल खड़ा हुआ। लेकिन यह नदी के पास पुराने पेड़ पर कठफोड़वा ठक-ठक कर रहा था। पहरेदार ने गाली दी और ठंड से ठिठुरता हुआ, फटे हुए ओवरकोट को बदन पर लपेटता हुआ मैदान में निकला। और कोई भी नहीं जागा था: लोग सुध-बुध खोए ऐसी नींद में डूबे पड़े थे कि सब एक जैसे लगते थे, यह नींद बिल्कुल निराशापूर्ण थी, वैसी ही जैसी नींद भूखे, सताए लोग सोते हैं, जिन्हें नए दिन से कोई आशा नहीं होती।

"मेतेलित्सा तो आया नहीं... खा-पी कर कहीं पसर गया होगा, यहां भूखे पड़े हैं," पहरेदार ने सोचा। यों तो वह भी औरों की भांति मेतेलित्सा को

प्रशंसा और गर्व से देखता था, लेकिन अब उसे लग रहा था कि मेतेलित्सा खासा कमीना आदमी है और उसे बेकार ही टुकड़ी का कमांडर बनाया गया है। पहरेदार के मन में तुरन्त ही यह आया कि वह यहां ताइगा में क्यों कष्ट भोगे जबकि मेतेलित्सा जैसे लोग सभी सांसारिक सुख भोग रहे हैं, परंतु किसी खास कारण के बिना लेविन्सन को परेशान करने का निश्चय नहीं कर पाया, सो उसने बक्लानोव को जगाया।

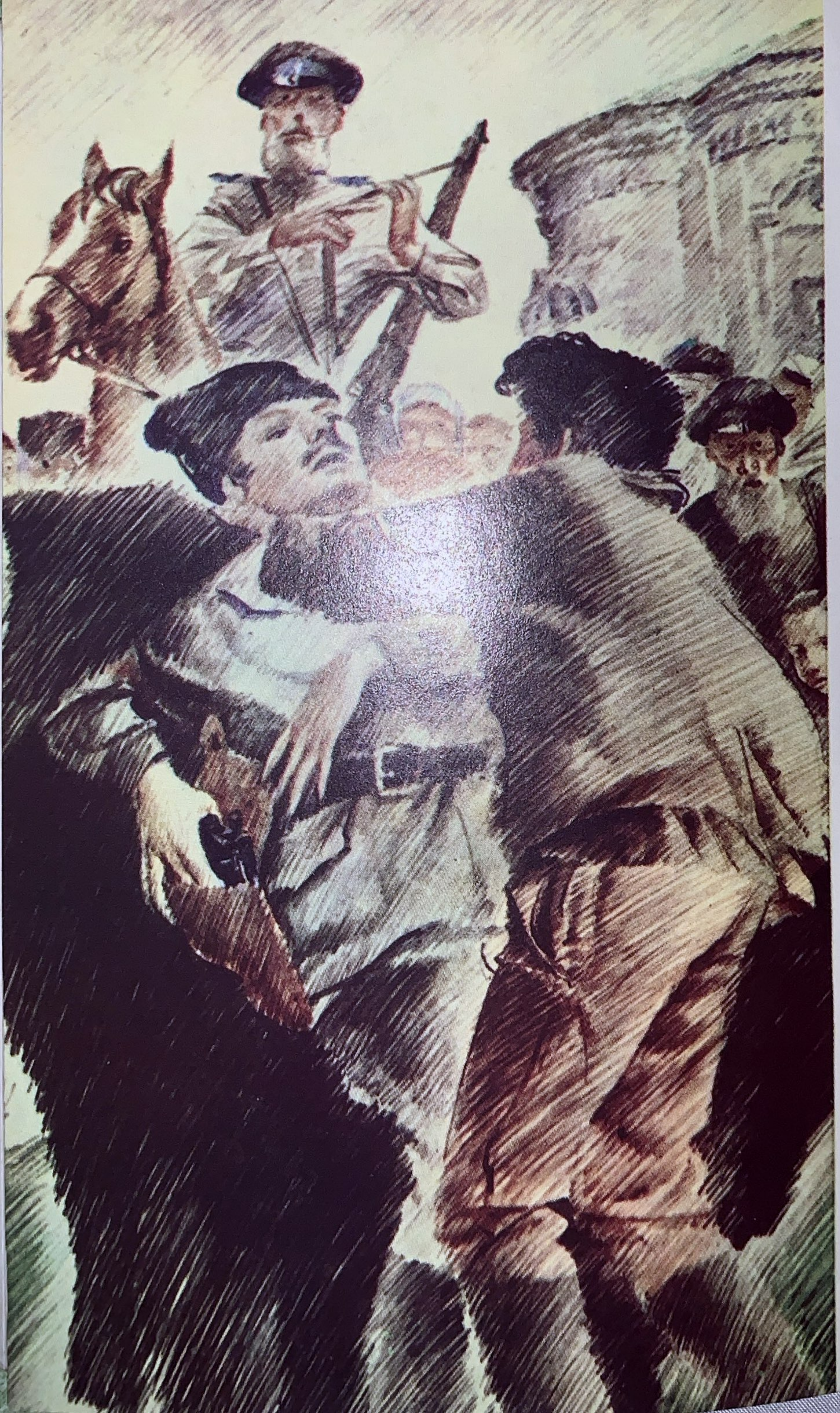
"क्या ?.. नहीं आया ?" अपनी उनींदी आंखें मलते हुए बक्लानोव हड़बड़ाकर उठने लगा। "आया कैसे नहीं ?!" सहसा वह चिल्लाया, अभी भी वह पूरी तरह जागा नहीं था, लेकिन समझ गया था कि चर्चा किस बात की है और इससे भयभीत हो उठा था। "अरे छोड़ो, यह कैसे हो सकता है ?.. ओह, हां! अच्छा, लेविन्सन को जगाओ।" वह उछलकर खड़ा हो गया, एक झटके में उसने अपनी पेटी कसी। उसकी भौंहें तन गईं, और वह अपने आप में सिमट गया।

लेविन्सन बड़ी गहरी नींद सो रहा था, पर अपना नाम सुनते ही उसने तुरन्त आंखें खोल लीं और बैठ गया। पहरेदार और बक्लानोव को देखते ही वह समझ गया कि मेतेलित्सा नहीं आया और दस्ते को अब तक यहां से कूच कर देना चाहिए था। पहले क्षण में उसे इतनी थकावट, इतनी शिथिलता महसूस हुई कि उसका जी चाहा सिर तक कोट ओढ़ ले और फिर से सो जाए, मेतेलित्सा और अपनी तकलीफ़ें – सब









कुछ भूल जाए। लेकिन उसी क्षण वह घुटनों के बल बैठा था और कम्बल लपेटते हुए रूखे, उदासीन स्वर में बक्लानोव के चिंता भरे सवालों का जवाब दे रहा था :

"तो क्या हुआ? मैंने यही सोचा था... बेशक, वह हमें रास्ते में मिलेगा।"

"और अगर न मिला तो?"

"न मिला तो?.. सुनो, तुम्हारे पास फ़ालतू रस्सी है?"

"उठो, उठो, क्या घोड़े बेचकर सो रहे हो! गांव चलो!" सोए पड़े लोगों को पांवों से धकेलते हुए पहरेदार चिल्ला रहा था। घास में से छापामारों के उलझे-पुलझे बालों वाले सिर उठ रहे थे और उनींदे में पहरेदार को अनघड़ गाली सुनाते जा रहे थे, अच्छे दिनों में टुकड़ी कमांडर दूबोव इन्हें "भोर की सलामी" कहता था।

"सब जले-भुने हैं," बक्लानोव ने विचारमग्न स्वर में कहा। "भेड़ियों की तरह भूखे हैं..."

"और तुम?" लेविन्सन ने पूछा।

"मैं क्या? मेरी क्या बात करते हो," बक्लानोव ने मुंह फुला लिया। "जैसे तुम, वैसे ही मैं भी – तुम्हें जैसे पता नहीं..."

"नहीं, पता है," लेविन्सन ने ऐसे स्नेहमिश्रित विनम्र स्वर में कहा कि बक्लानोव ने पहली बार उसे बारीकी से देखा।

"तुम तो बिल्कुल हड्डियों का पुतला होकर रह

गए। बस दाढ़ी ही दाढ़ी दीखती है," बक्लानोव सहसा दयार्द्र हो उठा। "तुम्हारी जगह मैं होता, तो..."

"चलो, चलके मुंह हाथ धो लें," लेविन्सन ने भौंहें सिकोड़कर और साथ ही मानो क्षमायाचना करते हुए मुस्कराकर उसे टोका।

वे नदी पर गए। बक्लानोव ने क़मीज़ उतारी और मुंह हाथ धोने लगा। यह स्पष्ट था कि वह ठंडे पानी से नहीं डरता। उसका शरीर मज़बूत, गठीला और सांवला था, मानो सांचे में ढाला गया हो, और सिर गोल-मटोल, बच्चों जैसा था। बच्चों जैसे भोले-भाले ढंग से ही वह सिर धो भी रहा था–चुल्लू से पानी डालकर एक हाथ से सिर रगड़ रहा था।

"मैं कल बहुत कुछ बोलता रहा था, किसी बात का वायदा भी किया था, और अब कहीं कुछ ठीक नहीं है," लेविन्सन को सहसा ख्याल आया। उसे मेचिक के साथ हुई बातचीत और इस बातचीत पर अपने विचारों की धुंधली सी याद आई और यह याद अप्रिय थी। यह बात नहीं थी कि उसे अपने विचार अब गलत लग रहे हों, यानी ऐसे लग रहे हों, जिनमें उसके साथ सचमुच जो हो रहा था, वह व्यक्त न हुआ हो,–नहीं, वह महसूस कर रहा था कि विचार तो सही थे, समझदारी भरे और रोचक भी थे, लेकिन फिर भी उन्हें याद करके उसके मन में एक अस्पष्ट सा असंतोष उठ रहा था। "हां, मैंने उसे दूसरा घोड़ा देने का वायदा किया था...

लेकिन इसमें ऐसी क्या बात है, जो ठीक न हो? नहीं, मैं आज भी ऐसा ही करता, तो फिर, इस मामले में सब ठीक है... लेकिन आखिर बात क्या है? हां, बात यह है..."

"खड़े क्यों हो?" बक्लानोव ने मुंह हाथ धोना खत्म करके मैले तौलिये से शरीर को रगड़कर लाल करते हुए पूछा। "बड़ा अच्छा पानी है, ठंडा-ठंडा!"

"बात यह है कि मैं बीमार हूं और दिन पर दिन आत्मनियंत्रण खोता जा रहा हूं," पानी की ओर बढ़ते हुए लेविन्सन सोच रहा था।

मुंह हाथ धोकर उसने पेटी कसी और जब कूल्हे पर अपनी माउज़र पिस्तौल का जाना-पहचाना भार महसूस किया, तो उसे लगा कि हां, रात भर में उसने कुछ आराम कर लिया है।

"मेतेलित्सा को क्या हुआ?" अब यही विचार पूरी तरह उसके मस्तिष्क पर हावी था।

लेविन्सन के लिए यह कल्पना करना भी कठिन था कि मेतेलित्सा चल-फिर नहीं रहा और ज़िंदा ही नहीं है। उसके मन में सदा मेतेलित्सा के लिए एक प्रच्छन्न आकर्षण रहा था और कई बार उसने यह देखा था कि उसे मेतेलित्सा के साथ सवारी करना, उससे बातें करना या महज़ उसे देखना ही अच्छा लगता है। मेतेलित्सा उसे किन्हीं विलक्षण समाजोपयोगी गुणों के कारण अच्छा नहीं लगता था, जो उसमें बहुत अधिक नहीं थे, बल्कि स्वयं लेविन्सन में ही कहीं अधिक थे। उसे आकर्षित करता था मेतेलित्सा का

शारीरिक बल, उसका चीमड़पन और उसकी वन्य जीवों जैसी वह जीवन शक्ति, जिसका अथाह स्रोत उसमें फूटा पड़ता था, और जिसका स्वयं लेविन्सन में इतना अभाव था। जब वह उसकी द्रुत, सदा कुछ करने को तत्पर आकृति देखता या उसे यह पता होता कि मेतेलित्सा कहीं पास ही है, तो वह अपनी शारीरिक दुर्बलता की बात अनायास ही भूल जाता और उसे लगता कि वह भी मेतेलित्सा की ही भांति बलवान और अथक हो सकता है। मन ही मन उसे इस बात पर गर्व भी था कि ऐसा व्यक्ति उसके अधीन है।

यह बात लोगों के मन में किसी तरह बैठ ही नहीं रही थी कि मेतेलित्सा भी शत्रु के हाथों में पड़ सकता है, हालांकि लेविन्सन को धीरे-धीरे इसी पर विश्वास होता जा रहा था। निढाल हो गया हर छापामार बड़े जतन से और डरते हुए इस विचार को अपने मन से भगा रहा था, क्योंकि उसे लगता था कि यदि ऐसा है तो उसके लिए आगे मुसीबतें ही मुसीबतें हैं, और शायद इसीलिए यह बात असम्भव प्रतीत होती थी। बावजूद इसके कि मेतेलित्सा जैसे फुर्तीले और कर्मठ व्यक्ति से इसकी कतई आशा नहीं की जा सकती थी, तो भी अधिकाधिक लोग पहरेदार के इस अनुमान को मानने को तैयार थे कि टुकड़ी कमांडर "खा-पीकर कहीं पसर गया है"। कई तो खुले आम मेतेलित्सा के "कमीनेपन और दगेबाज़ी" पर नाराज़गी ज़ाहिर कर रहे थे और लेविन्सन से बार-बार यह मांग कर रहे थे कि वह दस्ते को तुरन्त ही कूच करने का

आदेश दे। और जब लेविन्सन ने इस बात का खास तौर पर ख्याल रखते हुए कि रोज़मर्रा के सभी काम ठीक तरह से कर लिए जाएं, जिनमें एक मेचिक का घोड़ा बदलना भी थी, आखिर कूच करने का आदेश दिया, तो छापामार दस्ते में खुशी की ऐसी लहर दौड़ गई, मानो इस आदेश के साथ वास्तव में ही सभी मुसीबतें खत्म हो रही हों।

घोड़ों पर सवार छापामार दस्ता घंटे भर तक चलता रहा, दो घंटे चलता रहा, लेकिन काले-काले फहराते बालों वाला टुकड़ी कमांडर पगडंडी पर आता नज़र नहीं आया। इतना ही समय और बीत गया, लेकिन टुकड़ी कमांडर तब भी नहीं लौटा। और अब न केवल लेविन्सन बल्कि मेतेलित्सा से बुरी तरह जलने वालों और उसकी चुगली खाने वालों को भी इस बात में संदेह होने लगा कि मेतेलित्सा सही सलामत है।

ताइगा वन के सिरे तक पहुंचते-पहुंचते छापामार दस्ते में अर्थपूर्ण, गहरी चुप्पी छा गई।

मेतेलित्सा को होश आया तो वह बड़ी सी अंधेरी कोठरी में था – वह ठंडी ज़मीन पर लेटा हुआ था, और सबसे पहले उसे जो अनुभूति हुई वह ज़मीन की इस ठंडी सीलन की ही अनुभूति थी। यह सीलन उसके सारे शरीर में फैलती जा रही थी। उसे तुरन्त ही याद आ गया कि उसके साथ क्या घटा है। उसे जो मार पड़ी थी उससे अभी तक उसका सिर भन्ना

रहा था, बालों में खून सूख गया था, माथे और गालों पर जमे खून का उसे अहसास हो रहा था।

उसके दिमाग में जो पहला कमोबेश ठोस विचार आया, वह यह था कि किसी तरह वह यहां से भाग सकता है या नहीं। मेतेलित्सा को किसी तरह इस बात पर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जीवन में इतना कुछ अनुभव करने के बाद, हर काम में उसे मिली सफलता और उसके उन पराक्रमों के बाद, जिनसे लोगों में उसका इतना नाम हुआ था, वह भी अंततः इन सब लोगों की ही भांति पड़ा हुआ सड़े-गलेगा। उसने सारी कोठरी टटोल मारी, एक-एक छेद देखा, दरवाज़ा तोड़ने की कोशिश की, पर सब बेकार!.. चारों ओर ठंडी बेजान लकड़ी ही थी, और झरियां इतनी तंग थीं कि नज़र तक उनसे बाहर नहीं पहुंचती थी–पतझड़ की सुबह का मद्धिम उजाला ही मुश्किल से इन झरियों से अंदर आ पा रहा था।

लेकिन वह बारम्बार टटोलता जा रहा था, जब तक कि अंततः उसके दिमाग में यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं हो गया कि इस बार वह सचमुच ही बचकर नहीं निकल सकता, और यह बात होनी की लकीर की भांति पक्की है। ज्यों ही उसे पूरी तरह इस बात का यकीन हुआ, उसी क्षण अपने जीवन और मृत्यु के प्रश्न में उसकी सारी रुचि जाती रही। अब उसकी सारी आत्मिक और शारीरिक शक्ति एक ही प्रश्न पर केंद्रित हो गई, जो उसके अपने जीवन और मृत्यु

की दृष्टि से तो बिल्कुल गौण था, लेकिन जो अब उसके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन गया था। प्रश्न यह था कि किस तरह वह, मेतेलित्सा, जिसके विकट साहस और जीवट के ही सर्वत्र चर्चे होते थे, अपने मारने वालों को यह दिखाएगा कि वह उनसे डरता नहीं, बल्कि घोर घृणा ही करता है।

वह अभी यह सोच-विचार भी न पाया था कि दरवाज़े के बाहर आहट हुई, कुंडा खड़खड़ाया और सुबह की धुंधली, थरथराती रोशनी के साथ बंदूकें उठाए दो कज़्ज़ाक कोठरी में घुसे। मेतेलित्सा टांगें फैलाए, आंखें सिकोड़े उन्हें घूर रहा था।

उसे देखकर वे सकपकाए से दरवाज़े पर खड़े रहे, पीछे वाला कज़्ज़ाक बेचैनी से नाक सुड़कने लगा।

"चलो, भई," आखिर आगे वाले ने कहा। उसकी आवाज़ में किसी तरह की सख्ती या कटुता न थी, उलटे वह क्षमायाचना ही करता लगता था।

मेतेलित्सा सिर झुकाए, परन्तु अकड़ से बाहर निकला।

कुछ समय बाद वह काली टोपी और लबादे वाले परिचित व्यक्ति के सामने उसी कमरे में खड़ा था, जिसमें कल पादरी के बाग में से झांकता रहा था। यहीं पर आरामकुर्सी में सजीला, भरा-पूरा और मृदु स्वभाव का अफ़सर सीधा बैठा था और बिना किसी सख्ती के, आश्चर्य भरी आंखों से मेतेलित्सा को देख रहा था। इसे ही कल मेतेलित्सा स्क्वैड्रन कमांडर मान बैठा था। लेकिन अब दोनों को ध्यान

से देखकर किन्हीं नामालूम से लक्षणों से वह समझ गया कि यह सजीला अफ़सर नहीं, बल्कि दूसरा– लबादे वाला अफ़सर कमांडर है।

"जाओ," इस दूसरे अफ़सर ने दरवाज़े के पास खड़े कज़्ज़ाकों पर नज़र डालकर रुखाई से कहा।

वे दोनों अटपटे ढंग से एक दूसरे को धकेलते हुए कमरे से बाहर चले गए।

"कल तुम बाग में क्या कर रहे थे?" मेतेलित्सा के सामने रुककर और अपनी अपलक, पैनी नज़र उस पर गड़ाकर उसने जल्दी से पूछा।

मेतेलित्सा जवाब में चुपचाप उसे घूरने लगा, उसकी किंचित हिलती रेशमी काली भौंहें अफ़सर की पैनी नज़र का परिहास करती लगती थीं। उसके सारे हाव-भाव यह कहते लगते थे कि उससे चाहे कैसे भी प्रश्न पूछे जाएं और उनका उत्तर देने के लिए उसे चाहे कैसे भी विवश किया जाए, वह ऐसी कोई भी बात नहीं बताएगा, जिससे प्रश्न पूछने वाले संतुष्ट हो सकें।

"तुम यह बेवकूफ़ी छोड़ो," स्क्वैड्रन कमांडर फिर से बोला, वह ज़रा भी नाराज़ न था और न ही उसने आवाज़ ऊंची की, लेकिन कुछ ऐसे लहजे में उसने यह बात कही, जो यह दिखाता था कि वह मेतेलित्सा के मन में हो रही सारी हलचल को समझता है।

"बेकार में बोलने का क्या फ़ायदा?" मेतेलित्सा उपेक्षा से मुस्करा दिया।

स्क्वैड्रन कमांडर कुछ सेकंड तक उसके जड़, चेचकरू चेहरे को, जिस पर खून जमा हुआ था, घूरता रहा।

"चेचक कब हुई थी?" उसने पूछा।

"क्या?" मेतेलित्सा सकपका गया। सकपका वह इसलिए गया था कि स्क्वैड्रन कमांडर की आवाज़ से न तो उसे हीन दिखाने और न ही उसकी खिल्ली उड़ाने की कोशिश का आभास होता था। वह तो उसके चेचकरू चेहरे पर अपना सहज कौतूहल व्यक्त करता लगता था। लेकिन यह समझने पर मेतेलित्सा को इतना गुस्सा आया, जितना हीन दिखाए जाने पर या खिल्ली उड़ाए जाने पर भी उसे न आता: स्क्वैड्रन कमांडर का यह प्रश्न मानो उनके बीच किन्हीं मानवीय सम्बन्धों की सम्भावना की ज़मीन टटोल रहा था।

"तुम यहीं के हो या कहीं बाहर से आए हो?"

"छोड़ो, महामहिम!" मेतेलित्सा ने आक्रोश भरे दृढ़ स्वर में कहा। उसकी मुट्ठियां भिंच गईं, चेहरा तमतमा उठा, वह मुश्किल से ही अपने को इस आदमी पर टूट पड़ने से रोके हुए था। वह और कुछ कहना चाहता था, लेकिन तभी उसे यह ख्याल आया कि क्यों न वह सचमुच ही लाल-लाल खूंटियों भरे थुल-थुल, घिनौने शांत चेहरे वाले इस काले आदमी को धर दबोचे और उसका गला घोंट दे। यह विचार बिजली की तरह कौंधकर उसके मनोमस्तिष्क पर हावी हो गया और उसकी बात मुंह में ही रह गई। उसने एक कदम आगे बढ़ाया, उसकी बांहें फड़कीं और

चेचकरू चेहरा पल भर में पसीने से तर हो गया।

"ओहो!" इस आदमी के मुंह से तब पहली बार विस्मय भरा स्वर ज़ोर से निकला, लेकिन न तो वह कदम भर पीछे हटा और न ही उसने अपनी अपलक आंखें मेतेलित्सा से हटाईं।

मेतेलित्सा असमंजस में थम गया, उसकी आंखों से अंगारे बरस रहे थे। तब इस आदमी ने होलस्टर में से रिवाल्वर निकाला और मेतेलित्सा की नाक के सामने चमकाया। मेतेलित्सा ने अपने पर काबू पा लिया, और खिड़की की ओर मुंह करके अवहेलनापूर्ण चुप्पी साध ली। इसके बाद उसे रिवाल्वर दिखा-दिखाकर खूब धमकाया गया, भयानक सज़ा का डरावा दिया गया, उसे पूरी आज़ादी दे देने का वायदा करते हुए सब कुछ सच-सच बता देने की मिन्नतें की गईं लेकिन उसके मुंह से एक शब्द नहीं निकला, उसने पूछने वालों की ओर मुड़कर देखा तक नहीं।

यह सिलसिला चल ही रहा था कि दरवाज़ा हौले से खुला और किसी का झबरीले बालों, बड़ी-बड़ी भयभीत और मूर्खता भरी आंखों वाला सिर अंदर घुसा।

"अच्छा," स्क्वैड्रन कमांडर ने कहा। "सब जमा हो गए? ठीक है–जाओ, जवानों से कहो इस पट्ठे को ले जाएं।"

वही दो कज़्ज़ाक मेतेलित्सा को अहाते में लाए और खुले फाटक की ओर इशारा करके उसके पीछे-पीछे चलने लगे। मेतेलित्सा ने मुड़कर नहीं देखा,

तो भी उसे यह अहसास हो रहा था कि दोनों अफ़सर भी उसके पीछे-पीछे आ रहे हैं। वे गिरजे के चौक पर पहुंचे।

वहां लट्ठों के बने एक घर के सामने भीड़ जमा थी, जिसे घुड़सवार कज़्ज़ाकों ने घेर रखा था।

मेतेलित्सा को सदा यह लगता था कि उसे लोगों से कोई लगाव नहीं है और उनकी छोटी-छोटी चिंताओं और भागदौड़ भरी ज़िंदगी को, उनके सारे माहौल को वह हेय दृष्टि से देखता है। वह सोचता था कि लोगों का उसके प्रति क्या रुख है और वे उसके बारे में क्या कहते हैं, इसकी उसे कोई परवाह नहीं। उसके कभी कोई मित्र नहीं रहे थे और न ही उसने कभी किसी से मित्रता का नाता जोड़ने की कोशिश की थी। परन्तु साथ ही जीवन में वह जो कुछ भी करता आया था उसमें सबसे बड़े, सबसे महत्त्व-पूर्ण कार्य उसने अनजाने में ही लोगों की खातिर और लोगों के लिए ही किए थे, ताकि वे उसकी ओर देखें, उसे सराहें, उस पर गर्व करें और उसके गुण गाएं। और अब जब उसने अपना सिर उठाया तो सहसा किसानों, लड़कों, लाल-नीले ऊनी लहंगे पहने भयभीत औरतों, बेल-बूटेदार सफ़ेद रूमाल बांधे लड़-कियों, माथे पर झूलते बालों वाले तेज़-तर्रार घुड़-सवारों, जो इतने साफ़-सुथरे, इतने चुस्त-दुरुस्त, इतने भड़कीले थे कि मेलों में बिकने वाली तस्वी-रों से उतरे लगते थे – इन सब की डोलायमान, रंग-बिरंगी और शांत भीड़ उसकी नज़रों में समा

गई, नहीं, महज़ नज़रों में नहीं समाई, उसके हृदय में ही उतर गई। इन सब लोगों की घास पर नाचती लंबी, सजीव छायाएं और उनके ऊपर उठे, झीनी धूप में पखराए, ठंडे आकाश में जड़े प्राचीन गुम्बद भी उसके हृदय पटल पर अंकित हो गए।

"वाह, यह हुई न बात!" चिल्लाकर यह कहने का उसका जी हुआ और वह एकदम पूरी तरह खुल गया। उसके चारों ओर यह जो जीवन था, तड़क-भड़क थी और साथ ही दरिद्रता थी, यह सब जो गतिमान था, स्पंदित हो रहा था और चमक रहा था, जो स्वयं उसके अंतस् में पुलकित हो रहा था— इस सबसे वह उत्साहित हो उठा। और वह अधिक शीघ्रता से, अधिक खुलकर किसी वन्य जीव की भांति हल्के कदमों से, जो ज़मीन से बंधे नहीं थे, आगे बढ़ने लगा; चलते समय उसका लचीला बदन झूम रहा था। चौक में खड़ा हर आदमी उसकी ओर घूम गया और दम थामे यह अनुभव करता रहा कि उसके लचीले और आतुर-अधीर बदन में कैसा वन्य जीव जैसा और इस चाल जैसा ही हल्का-फुल्का, उन्मुक्त बल है।

भीड़ से ऊपर देखते हुए, परन्तु उसका मौन एकाग्र ध्यान अनुभव करते हुए मेतेलित्सा भीड़ को पार कर गया और लट्ठों के बने घर के ओसारे के पास रुका। दोनों अफ़सर उससे आगे निकलकर ओसारे पर चढ़ गए।

"इधर आओ, इधर," स्क्वैड्रन कमांडर ने उसे

अपने पास खड़े होने का इशारा करते हुए कहा। मेतेलित्सा एक छलांग में ही सारी सीढ़ियां लांघकर उसके पास जा खड़ा हुआ। अब सब लोग उसे अच्छी तरह देख सकते थे – उसकी देह सुघड़ थी और बाल काले-काले। वह हिरन की खाल के घुटनों तक ऊंचे नरम जूते पहने था। क़मीज़ के बटन खुले थे और उस पर एक डोरी से फेंटा लगा हुआ था, जिसके घने हरे फुंदने बंडी के बाहर निकले हुए थे। उसकी उड़ती आंखों में खूंख्वार परिंदों जैसी चमक थी और वे उधर लगी हुई थीं, जहां भोर के धुंधलके में भव्य चोटियां जड़वत् खड़ी थीं।

"इस आदमी को कौन जानता है?" स्क्वैड्रन कमांडर ने पूछा और भीड़ पर अपनी पैनी, वेधती नज़र दौड़ाई। पल भर को कभी किसी और कभी किसी चेहरे पर वह यह नज़र गाड़ देता।

और जिस किसी के भी चेहरे पर यह नज़र टिकती, वह हड़बड़ाते और पलकें झपकाते हुए अपना सिर झुका लेता, बस औरतें ही थीं जो नज़रें झुकाने का साहस न कर पातीं और बुत बनी कायरता भरे अनबुझ कौतूहल से चुपचाप उसकी ओर देखती रहतीं।

"कोई नहीं जानता?" स्क्वैड्रन कमांडर ने फिर से पूछा और इस बार उसने ऐसे व्यंग्य के स्वर में "कोई" पर बल दिया, मानो उसे यह सही-सही मालूम हो कि उलटे सभी "इस आदमी" को जानते हैं या उन्हें जानना चाहिए। "अभी हम पता लगाते हैं... नेचिताइलो!" उसने चिल्लाकर उस ओर हाथ

से इशारा किया, जहां टखनों तक लंबा ओवरकोट पहने एक ऊंचा तगड़ा अफ़सर बादामी घोड़े पर सवार खड़ा था।

भीड़ में दबी-दबी फुसफुसाहट दौड़ गई। आगे खड़े लोग पीछे मुड़कर देखने लगे। काली जैकट पहने कोई आदमी दृढ़तापूर्वक भीड़ को चीरता बढ़ रहा था, उसने सिर यों झुका रखा था कि उसका गरम कनटोप ही दीख रहा था।

"रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो!" जल्दी-जल्दी बुद-बुदाते हुए एक हाथ से वह रास्ता साफ़ करता जा रहा था और दूसरे से अपने पीछे किसी को खींचे लिए जा रहा था।

आखिर वह ओसारे के पास पहुंच गया और तब पता चला कि वह एक लड़के को खींचता लाया है। यह लम्बा कोट पहने एक दुबला-पतला सा काले बालों वाला लड़का था, जो डर के मारे अड़ रहा था और अपनी काली आंखें फाड़कर कभी मेतेलित्सा को और कभी स्क्वैड्रन कमांडर को देख रहा था। भीड़ में फुसफुसाहट तेज़ हुई, कुछ लोगों ने भारी सांस छोड़ी, औरतों की घुटी-घुटी आवाज़ें आईं। मेतेलित्सा ने नीचे नज़र डाली और तुरंत ही पहचान गया कि यह काले सिर वाला लड़का तो वही चरवाहा है – भयभीत आंखों और पतली सी गर्दन वाला चरवाहा, जिसे कल वह अपना घोड़ा सौंप आया था।

उसका हाथ पकड़े किसान ने टोपी उतारकर अपना चपटा सा चितकबरे (मानो अधपकी खिचड़ी हो)

सफ़ेद-गेहुएं बालों वाला सिर उघाड़ा। स्क्वैड्रन कमांडर को उसने झुककर सलाम किया और बोला :

"मेरा यह चरवाहा ..."

पर फिर लगा जैसे वह डरा कि अफ़सर उसकी पूरी बात नहीं सुनेंगे, और लड़के पर झुककर मेतेलित्सा की ओर इशारा करते हुए पूछने लगा :

"यही है क्या ?"

कुछ क्षण तक नन्हा चरवाहा और मेतेलित्सा एक दूसरे की आंखों में आंखें डाले देखते रहे : मेतेलित्सा उदासीनता का दिखावा करते हुए और चरवाहा भय, सहानुभूति और दया से। फिर लड़के ने स्क्वैड्रन कमांडर की ओर नज़र घुमाई और पल भर को, मानो उसे काठ मार गया हो, उसकी नज़र वहीं टिकी रही, फिर उसने अपने मालिक की ओर देखा, जो उसका हाथ पकड़े उस पर झुका इन्तज़ार कर रहा था। और तब एक गहरी और भारी सांस लेकर उसने इन्कार में सिर हिलाया ... भीड़ इतनी शांत हो गई थी कि घर के पीछे कोठरी में बछड़े के हिलने-डुलने की आवाज़ तक सुनाई दे रही थी, अब भीड़ में एक सरसराहट सी दौड़ गई और वह फिर से सुन्न हो गई।

"अरे, तू डर मत, बुधुए, डर मत," किसान मीठी, कांपती आवाज़ में उसे मना रहा था, वह स्वयं ही सकपका गया था और बार-बार मेतेलित्सा की ओर उंगली उठा रहा था। "वह नहीं तो और कौन है ? तू अच्छी तरह देख ले, पहचान ले, डर मत ... अरे, कमबख़्त !" सहसा झल्लाकर उसने अपनी बात बीच

में ही काट दी और लड़के का हाथ ज़ोर से खींचा। "वही है, हुज़ूर, और कौन हो सकता है," वह ज़ोर-ज़ोर से, मानो अपनी सफ़ाई देते हुए कहने लगा, साथ ही अपनी टोपी मसलता जा रहा था। "बस डर रहा है लड़का, और कौन होगा, घोड़े पर ज़ीन कसी है, और झोले में होलस्टर है... कल सांझ आग देखकर उधर निकल आया था, बोला, मेरा घोड़ा चरा दे, और खुद गांव में चला आया, और लौटके तो आया नहीं, उजाला हो गया, लड़का कब तक बाट देखता, सो घोड़े को घर ले आया, और घोड़े पर तो ज़ीन कसी है, और झोले में होलस्टर है–यही है, और कौन होगा?"

"कौन चला आया? कैसा होलस्टर?" स्क्वैड्रन कमांडर ने पूछा, उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह किसान कह क्या रहा है। किसान पहले से भी अधिक सकपकाते हुए टोपी मसलने लगा, और फिर से बेतरतीब ढंग से यह बताने लगा कि कैसे सुबह उसका चरवाहा पराया घोड़ा ले आया, उस घोड़े पर ज़ीन कसी हुई थी और झोले में रिवाल्वर का होलस्टर था।

"अच्छा, तो यह बात है," स्क्वैड्रन कमांडर ने आवाज़ खींचते हुए कहा। "पर यह तो मान नहीं रहा?" उसने लड़के की ओर सिर से इशारा किया। "अच्छा, लाओ, इसे इधर दो, हम अपने ढंग से इससे पूछते हैं।"

पीछे से धकेला जा रहा लड़का ओसारे के पास

आ गया, पर ऊपर चढ़ने का साहस नहीं कर पाया। अफ़सर फटाफट सीढ़ियों से उतर आया, उसने लड़के के पतले-पतले कांपते कंधे पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा और उसकी भय से फटी-फटी आंखों में अपनी डरावनी पैनी आंखें गड़ा दीं।

"आ-आ ... आ!" सहसा लड़का पुतलियां चढ़ाकर चीखने लगा।

"हाय, क्या किए दे रहे हैं?" किसी औरत से रहा न गया।

उसी क्षण ओसारे से एक लचीला शरीर बिजली सा लपका। सहस्रबाहु भीड़ चौंककर पीछे हट गई, ज़ोरदार धक्के से स्क्वैड्रन कमांडर ज़मीन पर आ गिरा।

"गोली मारो इसे!.. ओफ़, क्या है यह?" सजीला अफ़सर चिल्लाने लगा, असहाय सा वह हाथ आगे बढ़ाए था, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, वह यह भूल ही गया लगता था कि उसे भी गोली चलानी आती है।

कुछ घुड़सवार घोड़े बढ़ाकर लोगों को तितर-बितर करते हुए भीड़ में आगे बढ़े। मेतेलित्सा अपने पूरे शरीर का ज़ोर शत्रु पर डालते हुए उसका गला पकड़ने की कोशिश कर रहा था, लेकिन वह चमगादड़ की तरह फड़फड़ा रहा था, उसका ज़मीन पर फैला लबादा बिल्कुल पंखों जैसा ही लगता था और वह बार-बार अपनी कमर में बंधी पेटी को पकड़कर रिवाल्वर निकालने की कोशिश कर रहा था। आखिर वह

होलस्टर खोलने में सफल हो गया और प्रायः उसी क्षण जब मेतेलित्सा ने उसका गला पकड़ा, उसने एक के बाद एक गोलियां उस पर छोड़ीं...

जब वहां पहुंचकर कज़्ज़ाक मेतेलित्सा के पांव पकड़कर उसे घसीटने लगे, तब भी वह दांत पीस रहा था, घास पकड़ने और अपना सिर उठाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन सिर असहाय सा लुढ़क जाता और ज़मीन पर घिसटने लगता।

"नेचिताइलो!" सजीला अफ़सर चिल्ला रहा था। "स्क्वैड्रन को लाइन में खड़ा करो!.. आप भी चलेंगे?" उसने शिष्टता दर्शाते हुए, परंतु साथ ही नज़रें चुराते हुए स्क्वैड्रन कमांडर से पूछा।

"हां।"

"कमांडर का घोड़ा लाओ!.."

आधे घंटे बाद घुड़सवार कज़्ज़ाकों की स्क्वैड्रन पूरी तरह से हथियारों से लैस होकर गांव से निकली और उसी रास्ते पर बढ़ चली, जिस रास्ते पर रात को मेतेलित्सा इधर आया था।

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषयवस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

रादुगा प्रकाशन,

१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ



सुप्रसिद्ध सोवियत लेखक अलेक्सान्द्र फ़देयेव (१६०१-१९५६) की यह कहानी १९१९ की गर्मियों और पतझड़ में सुदूर पूर्व में हुए गृहयुद्ध की, छापामार संघर्ष की घटनाओं के बारे में है। स्वयं लेखक ने इस युद्ध में सक्रिय भाग लिया था।

G-1 P25